IGNITED MINDS
Journals

श्री अरविन्द के योग समन्वय का ऐतिहासिक व दार्शनिक मूल्यांकन

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VIII, Issue No. XVI, Oct-2014, ISSN 2230-7540

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

श्री अरविन्द के योग समन्वय का ऐतिहासिक व दार्शनिक मूल्यांकन

Pragya

Research Scholar, Sai Nath University, Ranchi, Jharkhand

सार :- योग शब्द का उद्भव संस्कृत के ''युजिर'' मूल से हुआ है जो ''युज'' धातु से बना है जिसका एक अर्थ है जोड़ना या मिलाना तथा दूसरा अर्थ समाधि है, समाधि का अर्थ मन के संयम से लिया जाता है। प्रारम्भ में योग का अर्थ केवल जोड़ना शब्द के रूप में ही प्रयोग किया जाता था। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि जब योग का अर्थ केवल मिलाना, जोड़ना से लिया जाता था उस समय ऋषियों के मन को संयम करने तथा स्थिर बनाने के तथ्यों का पता नहीं था। वैदिक ग्रन्थों में भी स्पष्ट उल्लेख है कि ऋषियों को योग के सर्वातिशायी उद्देश्य समाधि का पूर्ण ज्ञान था और इस स्थिति से वे पूर्णरूप से परिचित थे। यह स्थिति वे ध्यान, दीक्षा, तपस आदि साधनों द्वारा प्राप्त करते थे।

---------------------------------X---------------------------------

योग की परिभाषा और विश्लेषण

उपनिषदों के ऋषियों ने मन और इन्द्रियों के संयम को योग के उद्देश्य प्राप्ति का साधन बताया है। उत्तर कालीन उपनिषदों में योग शब्द का आध्यात्मिक अर्थ में प्रयोग हुआ है। कठोपनिषद में योग को इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि के स्थिरता की स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है-

तं योग मिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणम्।

अप्रभत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययो। 2.6।।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् में योगी के गुणों का उल्लेख किया गया है, कहा गया है कि उसके पास बीमारी, बुढ़ापा तथा मृत्यु नहीं जाते। उसका शरीर स्वस्थ एवं लचीला हो जाता है तथा उसका मन लोभ रहित तथा शान्ति एवं शक्ति से पूर्ण हो जाता है।

योग का रूप भारतीय दर्शन में भी देखने को मिलता है। चार्वाक को छोड़कर समस्त भारतीय दर्शन जीवन का अन्तिम ध्येय 'मोक्ष' को ही स्वीकार करते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये केवल कोरे ज्ञान की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि क्रियात्मक पक्ष की भी आवश्यकता है। इसलिये अधिकांश दार्शनिकों ने साधना के लिये किसी न किसी रूप में योग को स्वीकार किया है। हर दार्शनिक ने अपने-अपने मत के अनुसार समाधि का वर्णन किया है तथा समाधि तक पहुँचने के मार्ग को भी बताया है। महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन में योग साधना के लिये कहा है-

समाधि विशेषाभ्यासात् अरण्यगुहा पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः।

तदर्थे यम नियमाभ्यात्मात्म संस्कारोयोगाच्याध्यात्म विध्युपायैः।।

- न्याय सूत्र 4.2 - 38

महर्षि कणाद ने भी वैशेषिक दर्शन में यम, नियम, शौचादि योगांगों का वर्णन किया है-

अभिषेवनोपवास ब्रहमचर्य गुरूकुलवास वानप्रस्थ यज्ञदान प्रोक्षण

दि्ऽनक्षय मंत्रकाल नियमाश्च दृष्टामः। (वैशेषिक दर्शन 6.2.2 - 9.8)

सांख्य दर्शन में महर्षि बादरायण ने ब्रहमसूत्र के तीसरे अध्याय का नाम ''साधन'' रखा है और उसमें आसन, ध्यान आदि योगांगों का वर्णन किया है। महर्षि पंतजली प्रवर्त्तित योग सूत्र तो मुख्य रूप से योग विषयक ग्रन्थ ही है।

पतंजली मुनि ने अपने योग दर्शन में योग साधना का सम्पूर्ण वर्णन किया है। उन्होंने अपने दर्शन में योग का स्वरूप, योग का उद्देश्य-समाधि आदि के विषय में विस्तृत चर्चा करते हुए समाधि तक पहुँचने का मार्ग, मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ, बाधायें तथा उनसे बचाव का उपाय आदि सभी का वर्णन किया है। उन्होंने योग की परिभाषा इस प्रकार दी है-''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः''।

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। उन्होंने चित्त की वृत्तियों को रोकने के लिये अभ्यास और वैराग्य आवश्यक बताये हैं। श्रीमद् भागवत गीता में कर्म योग का वर्णन करते हुए योग की परिभाषा दी है-''योगः कर्मसु कौशलम्''।

इसमें श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म का सन्देश दिया है। श्री कृष्ण ने कर्मों को कुशलता से करना योग बताया है जिसमें कार्यों को बिना आसक्ति तथा परिणाम में बिना आसक्ति कर्म करने को कहा है। गीता के अनुसार यदि कर्मों में आसक्ति नहीं होगी तो उसके परिणाम भी हमें विचलित नहीं कर पायेंगे। इसके लिये गीता में कहा गया है-''समत्वं योग उच्यते।''अर्थात् हर स्थिति में समान रहना योग है यदि सुख के अवसर पर हम अपने आप को उत्तेजित न करें तथा सामान्य बने रहें तो दुःख आने पर भी हम अपने आप को स्थिर तथा समभाव बनाये रख सकते हैं। इसीलिये गीता में समभाव बनाये रखना आवश्यक बताया गया है।

सभी ग्रन्थों ने अपने-अपने मत के अनुसार योग के विभिन्न मार्गों का प्रतिपादन किया। किसी ने कर्म योग, को महत्व दिया। किसी ने भक्ति योग को, परन्तु जिस तरह नदियाँ भले ही किसी भी मार्ग से बहती हुई जाये परन्तु उनका उद्देश्य समुद्र तक पहुँचना होता है। उसी प्रकार सभी मार्ग अन्त में हमें भागवत् शक्ति या दिव्य शक्ति में जाकर मिल जाते हैं। श्री अरविन्द ने अपने योग समन्वय में किसी भी मार्ग की आलोचना नहीं की बल्कि उनको समन्वित करने का प्रयास किया है। उन्होंने योग की परिभाषा में भी समन्वय को महत्व दिया है। उनके अनुसार '':मानव प्रकृति और मानव-जीवन में इच्छा, ज्ञान और प्रेम तीन दिव्य शक्तियाँ हैं। ये उन तीनों मार्गों की सूचक है जिनसे मानव-आत्मा भगवान् की ओर

www.ignited.in

आरोहण करती है। इन तीनों की सम्मिलित परिपूर्णता, इन तीनों में मनुष्य का भगवान् से मिलन ही पूर्णयोग की नींव हैं।''

भारत में योग का महत्व

भारत में योग एवं साधना जैसे शब्द जन सामान्य में भी प्रचलित है। श्री अरविन्द ने अपने सर्वांग योग में सभी परमपरागत योग प्रणालियों का समन्वय किया है। भारत में वेदों और उपनिषदों से आज तक योग का महत्व बना हुआ है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारत भी आधुनिक भौतिकवाद की दौड़ में शामिल हो गया जिससे भारतीय धीरे-धीरे योग तथा आध्यात्म के क्षेत्र से दूर होते चले गये। भारत में भिन्न-भिन्न समय में ऋषि मुनियों ने योग की जीवित रखने के विभिन्न प्रयास किये। स्वामी शिवानन्द, स्वामी कुवल्यानन्द, श्री अरविन्द ऐसे ही योगी हुए जिन्होंने योग के प्राचीन रूप को आज के समाज के अनुसार वैज्ञानिक रूप दिया।

वर्तमान युग में योग का महत्व

आज के युग मे बढ़ती भौतिकता तथा आधुनिकीकरण के कारण मानव मानसिक तनाव तथा व्यग्रता की स्थिति से गुजर रहा है जिससे बचाव के लिये आज जितना अच्छा साधन योग में है शायद उतना अच्छा और किसी साधन में नहीं है। इसलिये वर्तमान युग में केवल भारत ही नहीं अपितु अन्य देश भी योग के प्रति आकृष्ट हो रहे हैं।

सर्वांग योग के घटक

मानव सत्ता की किसी एक शक्ति या सभी शक्तियों को लेकर उन्हें भागवत सत्ता या दिव्य शक्ति तक पहुँचने का साधन बना देना-यही योग का मूल सिद्धान्त है। एक साधारण योग में सत्ता की किसी एक मुख्य शक्ति या उसकी शक्तियों के किसी एक समूह को साधन या पथ बनाया जाता है, पर समन्वयात्मक पद्धति में सभी शक्तियों को एकत्र कर रूपान्तरकारी साधन सामग्री के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जिससे वह एक सर्वांग रूप को प्रस्तुत करेगी। हम किसी भी मार्ग पर चलें परन्तु अन्य मार्गों की उपेक्षा न करते हुए उन्हें भी सहयोगी बनाने का प्रयास करें। यदि सर्वांग मार्ग के घटक के रूप में कार्य करेंगे। हमें किसी भी पथ को नकारात्मक दृष्टिकोण से नहीं देखना। प्रत्येक पथ के साधन को घटक के रूप में जानने का प्रयास करना है जिससे दिव्य सत्ता तक पहुँचने के प्रयास में किसी भी दृष्टि से स्वयं को कमजोर न पायें।

हठयोग की प्रक्रिया का भी अपना शुद्ध आंतरात्मिक एवं आध्यात्मिक परिणाम होता है, राजयोग की प्रक्रिया मानसिक साधनों से एक अत्युच्च आध्यात्मिक परिणति तक लाभ करती है। त्रिमार्ग अपने खोज के साधन तथा अपने लक्ष्यों में पूर्णतः मानसिक और आध्यात्मिक प्रतीत हो सकता है पर उससे भी ऐसे फल प्राप्त हो सकते हैं जो अधिक स्वाभाविक रूप में अन्य मार्गों के ही फल होते हैं। ये फल एक सहज स्वाभाविक एवं अनैच्छिक विकास के रूप में ही हमारे सामने उपस्थित होते हैं और इसका कारण भी यही है कि आत्म शक्ति ही सर्वशक्ति है और जहाँ यह एक दिशा में अपनी पराकाष्ठा को पहुँचती है वहाँ इसकी अन्य सम्भावनाऐं भी एक वास्तविक तथ्य या एक आरम्भिक सम्भाव्य शक्ति के रूप में प्रकट होने लगती है। ये शक्तियाँ एक समन्वयात्मक योग को सम्भव बना सकती हैं।

तांत्रिक साधना अपने स्वरूप से ही एक समन्वयात्मक प्रणाली है। इसने इस विशाल वैश्व सत्व को अधिकृत कर लिया है कि सत्ता के दो ध्रुव हैं, ब्रहम और शक्ति या आत्मा और प्रकृति। मनुष्य की शक्ति को ऊँचा उठाकर उसे आत्मशक्ति बना देना ही इसकी प्रणाली है। यह अपनी साधन-प्रणाली में सभी विधियों को सम्मिलित करती है। हठयौगिक प्रक्रिया और विशेषकर चक्रों का उद्घाटन क्योंकि हठयोग प्रणाली में जब कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत किया जाता है तो वह ऊपर की ओर आरोहण करते हुए उन चक्रों से गुजरते हुए ही ऊपर जाती है।

साथ ही राजयोग की शुद्धि, ध्यान और एकाग्रता, भक्ति की प्रेरक शक्ति और ज्ञान की पद्धति। तांत्रिक प्रणाली में केवल इन विशिष्ट योगों की विभिन्न शक्तियों को केवल एकत्र ही नहीं किया जाता बल्कि अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति के द्वारा योग-पद्धति के क्षेत्र को विस्तृत करती है। तांत्रिक प्रणाली में शक्ति ही सर्व-प्रधान है, वही आत्मा के खोज की कुंजी बनती है, जो शक्ति को ऊपर ले जाने में सहायक है।

तंत्र प्रणाली निचले तल से आरंभ करती है और आरोहण करते हुए ऊपर शिखर तक पहुँचती है। अतः यह सबसे पहले शरीर और उसके केन्द्रों (चक्रों) के स्नायु मण्डल में जागरित शक्ति की क्रिया पर बल देती है। षट् चक्रों के उद्घाटन के द्वारा आत्मा की विभिन्न शक्तियों को उद्घाटन किया जाता है।

चेतना के विभिन्न स्तरों पर योग

योग का लक्ष्य यह है कि मानव-सत्ता को साधारण मन की चेतना से आत्मा की चेतना में उठा ले जाय। साधारण मन की चेतना प्राणिक और भौतिक प्रकृति के नियन्त्रण के अधीन है। जन्म, मृत्यु और काल के द्वारा तथा शरीर की आवश्यकताओं एवं कामनाओं के द्वारा पूर्णतया आबद्ध है। जबकि आत्मा की चेतना अपनी सत्ता में युक्त है और मन-प्राण-शरीर रूपी अवस्थाओं को आत्मा के ऐसे स्वीकृत निर्धारणों के रूप में प्रयुक्त करती है जो आत्मा को एक मूर्त रूप प्रदान करते हैं। इनका प्रयोग वह मुक्त आत्मज्ञान तथा मुक्त आनन्द के साथ करती है। साधारण मन जिसमें हम निवास करते हैं और हमारी दिव्य एवं अमर सत्ता की अध्यात्म चेतना जो योग के उच्चतम परिणाम के रूप में प्राप्त होती है। इन दोनों में यही मूलभूत अन्तर है। विकासात्मक प्रकृति इस रूपान्तर के लिये मनुष्य को पूर्णतः मानवीकृत मानव चेतना की ओर अग्रसर कर देती है। पूर्णतः मानसीकृत का अर्थ है कि मनुष्य को प्राण प्रधान पशु को प्राथमिक बुद्धि से उठाकर उच्चतर बुद्धि तक ले जाना, मनुष्य में बुद्धि मानसिक बोधशक्ति, संकल्प, सौन्दर्यवृत्ति तथा तर्कबुद्धि का उज्जवल रूप बन जाती है। मन की चोटियों तक ऊँचे उठकर और उसकी गहराइयों के द्वारा गंभीर बनकर मनुष्य अपने अन्दर स्थित किसी महान एवं दिव्य सत्ता को जान जाता है जिसकी ओर यह सब कुछ गति कर रहा है। वह अपने मन की शक्तियों को उस सत्ता की ओर लगा देता है जिसे वह प्राप्त करना चाहता है। उस सत्ता को हृदयंगम करके पूर्ण रूप से वही बन जाना चाहता है जिससे इसके महत्तर चैतन्य, आनन्द एवं अस्तित्व में पूर्ण रूप से अपना अस्तित्व धारण कर सके। परन्तु साधारण मन में इस उच्चतर चेतना का केवल एक अंश मात्र ही ग्रहण कर सकता है जबकि यदि उसे इस पूरे रूप को आत्मसात् करना है तो वह अपनी सत्ता के सभी अंगों की आध्यात्मिक चेतना के यंत्रों में पूर्णतया रूपान्तरित कर दे। इस रूपान्तर के लिये जिस आत्मसिद्धि योग की आवश्यकता है। उसमें मानसिक और प्राणिक प्रकृति को शुद्ध करना आवश्यक है। साथ ही कामनामय पुरूष की अज्ञानमय एवं विक्षुब्ध क्रिया के अधीन रहने वाली अंधकारमय अवस्था के स्थान पर एक विशाल सत्ता की स्थापना करना। ऐसी सत्ता भाव प्रधान मन, प्राणिक मन और भौतिक प्रकृति को अधिक शान्त कर देती है, जिससे हमारी आत्मा अधिक शान्ति और एकाग्रता के साथ इस ओर बढ़ सके। जिसके परिणाम स्वरूप निम्नतर प्रकृति की क्रिया स्थान पर ईश्वर के नियन्त्रण के अधीन रहने वाली उच्च और विराट् भागवत शक्ति की क्रिया को स्थापित कर सकते हैं। ये सामान्य चेतना से कहीं अधिक उच्च चेतना का निर्माण करती है जिसका आधार आध्यात्मिक है। परन्तु जब भागवत् शक्ति का आगमन होगा तब यह प्रश्न भी उठता है कि भागवत शक्ति मनुष्य में किस माध्यम के द्वारा कार्य करेगी ? क्या यह कार्य मानसिक स्तर पर मन के द्वारा होगा अथवा किसी अति मानसिक रचना के द्वारा इस कार्य को किया जायेगा। यदि यह कार्य मन को ही यन्त्र बनाकर किया जाना है तो मन को अपने ज्ञान, संकल्प आनन्द

www.ignited.in

तथा अन्य सभी वस्तुओं को उच्च रूप देना होगा। यद्यपि मन अपनी सीमाओं में कार्य करते हुए आध्यात्मिक शुद्ध एवं मुक्त होकर तथा पूर्णता प्राप्त करते हुए अति मानसिकता के अत्याधिक निकट पहुँच सकता है फिर भी इसमें कुछ अपूर्णता रह सकती है। मन अपने स्वभाव के ही कारण सर्वथा यथार्थ सत्यता के साथ रूपान्तरित नहीं हो सकता, न वह दिव्य ज्ञान, संकल्प और आनन्द का एकीकृत पूर्णता के साथ कार्य कर सकता है। मन अपने अन्दर अनन्त को प्रतिबिम्बित कर सकता है, वह अपने आपको उसके अन्दर विलीन कर सकता है परन्तु वह स्वयं अपने ही ज्ञान के द्वारा कार्य करते हुए अनन्त आत्मा का सीधा और पूर्ण यन्त्र नहीं बन सकता। क्योंकि भागवत शक्ति मानसिक नहीं बल्कि अति मानसिक वस्तु है अतः मन के निकटतम रहते हुए भी वह साधारण प्राणिक मन से ऊपर है। ''प्रश्न यह है कि सिद्ध मनुष्य कहाँ तक अपने आपको मन से ऊपर उठा सकता है, अतिमानस के साथ किसी प्रकार का एकीकरण मिलन प्राप्त कर सकता है और अपने अन्दर अति मानस का एक स्तर, एक प्रकार का विकसित विज्ञापन निर्मित कर सकता है जिसके रूप और सामर्थ्य शक्ति की सहायता से भागवत शक्ति, मानसिक रूपान्तर के द्वारा नहीं, वरन् अपनी अतिमानसिक प्रकृति में अन्तर्जात रूप से, सीधे ही कार्य कर सके।'' मनुष्य को स्वयं को इतना सक्षम बनाना है कि भागवत शक्ति स्वयं उसे सीधे चुन सकें तथा मानस से अतिमानसिकरण के लिये प्रेरित कर सके। मन को एकाग्र तथा एक कुशल यन्त्र बनाने के लिये योग एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि योग एक क्रियात्मक पहलू है मानव को उसकी प्रसुप्त क्षमताओं का ज्ञान उसकी प्रसुप्त क्षमताओं का ज्ञान कराने तथा मानव को उच्चतर चेतना की ओर ले जाने के लिये। यदि हम जीवन और योग को देखें तो सम्पूर्ण जीवन ही चेतन या अवचेतन रूप में योग का ही भाग दिखायी देगा, क्योंकि जब हम उच्चतर चेतना की तरफ बढ़ते हैं तो अपने साधारण मन को उस सत्ता से साक्षात्कार के लिये तैयार करना आवश्यक है। साधारण मन अचानक होने वाले परिवर्तन या उच्च मानसीकरण के साधारण रूप में सहन नहीं कर सकता, यौगिक प्रणालियाँ उसे इसके लिये धीरे-धीरे तैयार करती हैं। यौगिक प्रणालियों मनुष्य को धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाती हैं। जैसे हठयोग मनुष्य को शारीरिक और प्राणिक स्तर पर तैयार करता है। मनुष्य अपने स्थूल स्तर को पहचानते हुए सूक्ष्म शरीर की ओर बढ़ता है। अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण, मन का वशीकरण आदि का अभ्यास करता है। मानसिक स्तर के लिये राजयोग का अभ्यास किया जाता है। राजयोग इस ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित है कि हमारे आंतरिक तत्त्व, कार्य तथा हमारी शक्तियाँ अलग-अलग की जा सकती हैं। उनमें विघटन भी हो सकता है तथा उन्हें फिर से मिलाया भी जा सकता है। इस प्रकार इससे असम्भव माने जाने वाले कार्य भी कराये जा सकते हैं। राजयोग मनुष्य के मानसिक स्तर पर प्रभाव डालता है अपनी क्षमताओं को बढ़ाते हुए अपनी चेतना को ऊपर उठाने का प्रयास करता है। मनुष्य योग के माध्यम से अपनी चेतना को पहचानने का प्रयास करता है। धीरे-धीरे शारीरिक स्तर से सूक्ष्म स्तर की ओर बढ़ता है। ''मनुष्य के अन्दर विकासशील आत्माभिव्यक्ति की, जिसे उसका विकास कह सकते हैं, तीव्र क्रमिक तत्वों पर आधारित होना चाहिये। पहला वह तत्त्व है जो पहले ही विकसित हो चुका है, दूसरा जो लगातार चेतन विकास की अवस्था में रहता है और तीसरा जिसे विकसित होना है तथा जो प्रारम्भिक रचनाओं में या किन्हीं अन्य अधिक विकसित रचनाओं में, यदि सतत रूप में नहीं तो कभी-कभी एक नियमित अन्तराल पर, पहले से प्रकट हो सकता है।''

आवश्यक नियम और दशायें

साधारणतः योग में किसी भी योग मार्ग के एक ही पथ को साधन या पथ के रूप में चुन लिया जाता है तथा उसी मार्ग पर चलते हुए सत्ता की अन्तिम शक्ति तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है, जबकि योग का मूल सिद्धान्त यह होना चाहिये कि योग में सभी शक्तियों या मार्गों को एकत्र कर रूपान्तरकारी साधन सामग्री में सम्मिलित कर लिया जाये। यदि समन्वयात्मक योग की पद्धति है इसमें मुख्य उद्देश्य है भागवत सत्ता का साक्षात्कार उस दिव्य सत्ता तक पहुँचने के लिये किसी भी मार्ग को अथवा सम्मिलित रूप में सभी मार्गों के समन्वय को इसके लिये प्रयोग किया जा सकता है। किसी भी योग की प्रक्रिया का स्वरूप, जिस साधन या मार्ग का वह प्रयोग करता है उसी के अनुसार होता है जैसे हठयोग में शरीर प्राण को मुख्य रूप से साधन बनाया जाता है जबकि राजयोग में मानसिक और आत्म तत्त्व, ज्ञानमार्ग और भक्ति मार्ग आध्यात्मिकता के साथ-साथ प्रज्ञात्मक और भावनात्मक भी है। इनमें से प्रत्येक अपनी विशिष्ट शक्ति के तरीकों के अनुसार परिचालित होता है, साधन कोई भी इन सबका उद्देश्य एक ही होता है मानवीय सत्ता को दिव्य सत्ता की ओर ले जाना या मानव सत्ता की दिव्य पूर्णता प्राप्त करना। मानव के अन्दर यह क्षमता विद्यमान है कि वह स्वयं का विकास कर सकता है, उसका मन पूर्णता के एक आदर्श प्रतिमान की कल्पना करके एवं उसे स्थिर रूप से अपने सामने रखकर उसका अनुसरण कर सकता है।

समन्वयात्मक योग का उद्देश्य अधिक समग्र एवं सर्वग्राही होना चाहिये, उसे आत्मसिद्धि के विशालतर आवेग के इन सब तत्त्वों या प्रवृत्तियों को अपने अंतर्गत करके इनमें सामंजस्य या एकत्व स्थापित करना चाहिये। इस कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिये उसे उस सत्य को अधिकृत करना होगा जो साधारण धार्मिक सिद्धान्त से अधिक उच्च है। समस्त जीवन एक प्रच्छन्न योग है अर्थात यह प्रकृति का अपने अन्दर छिपे दिव्य तत्त्व की खोज और चरितार्थता की ओर एक अस्पष्ट विकास है। जैसे-जैसे मनुष्य ज्ञान, विकल्प और कार्य को माध्यम बनाकर परम आख्या की ओर बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे मनुष्य के अन्दर स्थित दिव्य तत्त्व अधिक स्व-चेतन तथा प्रकाशमय तथा अधिक विराट बनता जाता है। मन, प्राण, शरीर तथा हमारी प्रकृति के सभी रूप इस विकास के साधन हैं।

मन परिपूर्णतः प्राप्त करने के लिये अपने से परे स्थित महत्तर ज्ञान की ओर बढ़ता है। परन्तु जीवन अपनी समग्र पूर्णता तब तक प्राप्त नहीं कर पाता जब तक वह सत्ता की जिस शक्ति के स्थूल आधार एवं भौतिक आरम्भ बिन्दु के रूप में कार्य करता है उसी का यन्त्र बनकर रहना उसका चरम परम उपयोग है। लेकिन भौतिक सत्ता की साधना का कोई लक्ष्य नहीं है जब तक हम आत्मा की शक्ति के समक्ष स्वयं को न प्रस्तुत कर दें। मनुष्य का लक्ष्य है। आत्मा के सत्य एवं उसकी शक्ति में विकसित होना तथा उस शक्ति की प्रत्यक्ष क्रिया से आत्म-अभिव्यक्ति का उपयुक्त साधन बनना ''मनुष्य का भगवान् में जीवन धारण करना तथा परमात्मा का मानवता में दिव्य जीवनयापन करना ही सर्वांगपूर्ण आत्मसिद्धी योग का सिद्धान्त एवं संपूर्ण लक्ष्य होगा।''

योग में भले ही प्रणाली कोई भी अपनायी जाये उसमें पूर्ण रूप से समर्पण और श्रद्धा का होना आवश्यक है। प्रत्येक प्रणाली का अपना मार्ग है जो सम्भवतः हमें लक्ष्य की ओर ले जाने में सहायक हो परन्तु भिन्न-भिन्न पद्धतियों में से उचित और अपनी क्षमता के अनुसार उचित पद्धति का चयन करना आवश्यक हो जाता है। श्री अरविन्द का योग समन्वय हमें इस कार्य में सबसे अधिक सरल पथ दिखाता है। हमारा मुख्य लक्ष्य दिव्य सत्ता से साक्षात्कार है, समन्वयकारी पद्धति हमें चारों तरफ से तैयार करते हुए उस ओर बढ़ने के लिये तैयार करती है। हम हठयोग की तरह शारीरिक और प्राणिकस्तर पर तैयार हो। राजयोग की तरह आध्यात्मिक और भावनात्मक स्तर पर, हमें अपनी सत्ता को दिव्य सत्ता की ओर ले जाने के लिये स्वयं को पूर्ण रूप से तैयार करना है और यह पूर्णतः इस समन्वयकारी पद्धति के बिना नहीं आ सकती। जब व्यक्ति स्वयं को दिव्य सत्ता के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये तैयार हो जाता है। उस समय दिव्य

सत्ता उसे ऊपर की ओर खींचने लगती है अर्थात् आरोहण के लिये स्वीकृति दे देती है।

योग के प्रत्येक दार्शनिक सिद्धान्त के लिये ईश्वर या सर्वोच्च सत्ता का विचार आवश्यक है। क्योंकि साधारण सत्ता द्वारा इसी सर्वोच्च सत्ता की प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया जाता है। भक्तियोग के अनुसार यह विचार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है कि ''जिस प्रकार ईश्वर व्यक्ति के लिये आवश्यक है और व्यक्ति उसकी खोज करता है उसी प्रकार व्यक्ति भी एक प्रकार से भगवान् के लिये आवश्यक है और भगवान उसकी खोज करते हैं।''

आधार और अवस्थायें

प्रत्येक दर्शन इस तथ्य पर आधारित है कि सृष्टि में दो मुख्य शक्तियाँ हैं जिनमें एक जड़ तथा एक चेतन है। इन दोनों का समन्वय सृष्टि की आवश्यक शर्त है। जड़ तत्त्व आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भले ही कितना भी तुच्छ क्यों न समझा जाये परन्तु वह हमारा आधार है। सभी उपलब्धियाँ तथा पूर्णताओं के लिये सबसे अधिक आवश्यक है दूसरा चेतन तत्त्व जो जड़ तत्त्व या स्थूल शरीर में अस्तित्व का साधन है। यहीं हमारी मानसिक और आध्यात्मिक क्रियाओं का भी आधार है। चेतन तत्त्व स्थायी एवं स्वयं प्रकाशमान है जबकि जड़ तत्त्व अस्थायी है। मन, जड़ और चेतन के बीच कड़ी है। मन ही इन दोनों के समन्वय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मन के कारण ही चेतन तत्त्व अपना अस्तित्व भूलकर जड़ के भौतिक कारकों में स्वयं को लिप्त कर लेता है। प्रत्येक भारतीय दर्शन इसी समन्वय को अपने दर्शन का मुख्य आधार मानता है। प्रत्येक भारतीय दर्शन में प्रश्न महत्वपूर्ण है कि जड़ और चेतन जिनका स्वभाव आपस में भिन्न है उनके समन्वय का क्या कारण है। मनुष्य अपने जीवन में इन प्रश्नों का उत्तर भी ढूंढ सकता है तथा उस कारण को खोजकर उससे मुक्त भी हो सकता है। प्रकृति ने जिस तत्त्व को हमारे लिये विकसित किया तथा दृढ़ रूप से स्थापित किया वह है हमारा शारीरिक जीवन। ''ऐतरेय उपनिषद् में कहा गया है कि जब दिव्य सत्ता ने देवताओं के सामने बारी-बारी से पशुओं के रूप उपस्थित किये तो वे उन्हें अस्वीकार करते गये, पर ज्योंहि मनुष्य उनके सामने आया। उन्होंने कहा यही वस्तु पूर्ण रचना है, और उन्होंने उसमें प्रवेश करना स्वीकार कर लिया।'' मनुष्य ही सृष्टि की वह उत्कर्ष रचना है जिसमें बौद्धिक क्षमता का विकास हुआ है। मनुष्य जीवन की वास्तविकता को पहचानने तथा उसे आत्मसात् करने का प्रयास कर सकता है।

निष्कर्ष

''मानसिक जीवन से एक अधिक उच्चतर जीवन की स्थापना ही भारतीय दर्शन का मुख्य आधार है और इसे प्राप्त एवं संगठित करने का कार्य ही वह सच्चा उद्देश्य है जिसे चरितार्थ करने के लिये योग की प्रणालियाँ प्रयुक्त की जाती हैं।'' मन भी एक यन्त्र मात्र है यह विकास की अन्तिम अवस्था या उसका अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह आन्तरिक यन्त्र के रूप में कार्य करता है। हमें जिसे प्राप्त करना है वह कोई नयी वस्तु नहीं है। शरीर में स्थित आत्मा व दिव्य सत्ता (परमात्मा) एक ही रूप हैं। उसे केवल जानना या अनावरण करना होता है। हमें अपने भौतिक सत्ता या शरीर को साधन रूप में प्रयोग करना है जिससे उसके अन्दर स्थित चेतन तत्त्व को उसकी वास्तवकि सत्ता का रूप दिखा सकें। योग की परिभाषिक सूची में भौतिक-प्राणिक सत्ता का नाम आता है। जिसे स्थूल शरीर कहते हैं। यह अन्नकोष तथा प्राणकोष से निर्मित हैं तथा इसमें स्थित मानसिक सत्ता को सूक्ष्म शरीर कहते हैं जो मनोमयकोष से बना है, इसके अतिरिक्त एक तीसरा स्तर भी होता है जो अति मानसिक सत्ता का सर्वोच्च और दिव्य स्तर है। यह विज्ञानकोष तथा आनन्दकोष है। यह स्तर भी मनुष्य में स्थित है परन्तु इसे पहचानने के लिये कठिन साधना व अत्याधिक प्रयास की आवश्यकता होती है। जब मनुष्य सामान्य मानसिक स्तर से उच्च मानसिक स्तर की ओर आरोहण करता है तब वह धीरे-धीरे आनन्दकोष की ओर बढ़ता है। यह आनन्द की अवस्था हृदय और संवेदनाओं के सुख की अवस्था नहीं है बल्कि यह आनन्द की वह अवस्था है जिसमें पहुँचने के बाद सुख की ही अनुभूति नहीं होती वरन् यह उससे उच्च अवस्था है। यह वह सुखद अवस्था नहीं है जिसके पीछे दुःख और कष्ट विद्यमान हैं बल्कि यह उससे उच्च अवस्था है जो स्वयंभू है जिसका अपना अस्तित्व है तथा जिस अवस्था में पहुँचने के बाद साधारण मन के दुःख और कष्ट बहुत पीछे रह जाते हैं। ''अतएव, हम प्रकृति में तीन क्रमिक अवस्थाऐं देखते हैं। शारीरिक जीवन, जो यहाँ भौतिक जगत् हमारे अस्तित्व की आधारशिला है, मानसिक जीवन, जिसमें हम अभिव्यक्त होते हैं और जिसकी सहायता से हम शारीरिक जीवन का अधिक उच्च प्रयोग करते हैं। दिव्य जीवन जो इन दोनों का ही लक्ष्य है जो इन्हें इनकी उच्चतम संभावनाओं में उन्मुक्त करता है।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

- वैशेषिक दर्शन - 6.22ए 6ण्2ण्8
- ब्रहमसूत्र 4ण्1ए 7ए 11
- श्री अरविन्द योग समन्वय पृष्ठ 10
- योग समन्वय (उत्तरार्द्ध) पृ0 708
- योग समन्वय उत्तरार्द्ध, पृ0 910
- योग समन्वय (पूर्वार्द्ध) पृ0 15